

भारतीय संसदीय लोकतंत्र में राष्ट्रपति की संवैधानिक मर्यादा और परिस्थितिजन्य अधिकार का पुनर्मूल्यांक

DOI: <https://doi.org/10.63345/ijre.v15.i10.1>

सीता राम पंडित

शोधार्थी

राजनीति विज्ञान विभाग

महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, शिवनगर, पोखरा, पोड़ी
गढ़वाल - 246169, उत्तराखण्ड भारत

डॉ. पी पी राणा

शोध निर्देशक

राजनीति विज्ञान विभाग

महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, शिवनगर, पोखरा, पोड़ी
गढ़वाल - 246169, उत्तराखण्ड भारत

सार—भारतीय संविधान राष्ट्रपति को राष्ट्र का संवैधानिक प्रमुख बनाता है। अनुच्छेद 74(1) के अंतर्गत राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य है। फिर भी त्रिशंकु लोकसभा, बहुमत खो चुकी सरकार, विधेयकों पर निर्णय और अनुच्छेद 356 के प्रयोग जैसी परिस्थितियों में राष्ट्रपति के पास सीमित किंतु निर्णायक विवेक बना रहता है। प्रस्तुत शोध संवैधानिक मर्यादा और परिस्थितिजन्य अधिकार के इस द्वंद्व का पुनर्मूल्यांकन करता है। अध्ययन में मिश्रित शोध प्रविधि अपनाई गई। इसमें संवैधानिक प्रावधानों, संविधान सभा की बहसों, सर्वोच्च न्यायालय के प्रमुख निर्णयों और राष्ट्रपतीय हस्तक्षेपों का दस्तावेजी विश्लेषण शामिल है। साथ ही 250 विशेषज्ञ उत्तरदाताओं (विधि एवं राजनीति विज्ञान के संकाय सदस्य, अधिवक्ता, शोधार्थी और सेवानिवृत्त प्रशासनिक अधिकारी) से संरचित प्रश्नावली द्वारा आँकड़े एकत्र किए गए। बहुचर प्रतिगमन विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि संवैधानिक मर्यादा ($\beta = 0.313$), परिस्थितिजन्य अधिकार ($\beta = 0.248$) और संस्थागत संतुलन ($\beta = 0.323$) मिलकर लोकतांत्रिक वैधता के 45.6% विचरण की व्याख्या करते हैं ($F(3,246) = 68.73, p < .001$)। उत्तरदाता समूहों में परिस्थितिजन्य अधिकार की धारणा में सार्थक अंतर पाया गया ($F(3,246) = 3.55, p = .015$)। फ्रीडमैन परीक्षण में त्रिशंकु सदन में प्रधानमंत्री की नियुक्ति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिस्थितिजन्य अधिकार माना गया ($\chi^2(5) = 312.46, p < .001$)। निष्कर्ष यह है कि राष्ट्रपति का विवेक संसदीय लोकतंत्र के विरुद्ध नहीं है। मर्यादित और पारदर्शी ढंग से प्रयुक्त होने पर यह लोकतंत्र का एक सुरक्षा-तंत्र है।

मुख्य शब्द—राष्ट्रपति, संवैधानिक मर्यादा, परिस्थितिजन्य विवेक, अनुच्छेद 74, अनुच्छेद 356, संसदीय लोकतंत्र, संस्थागत संतुलन

प्रस्तावना

भारत ने ब्रिटिश वेस्टमिंस्टर प्रणाली से प्रेरित संसदीय शासन अपनाया। इसमें वास्तविक कार्यपालिका शक्ति प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद के पास होती है, जबकि राष्ट्रपति औपचारिक प्रमुख होता है। संविधान सभा में डॉ. भीमराव अंबेडकर ने राष्ट्रपति की स्थिति को इंग्लैंड

के सम्राट के समान बताया था, जो राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है पर शासन नहीं करता (Constituent Assembly Debates, 1948)। किंतु संविधान ने राष्ट्रपति को पूर्णतः निष्क्रिय पद नहीं बनाया। 42वें संविधान संशोधन (1976) ने मंत्रिपरिषद की सलाह को राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी बनाया। 44वें संशोधन (1978) ने राष्ट्रपति को सलाह एक बार पुनर्विचार हेतु लौटाने का अधिकार दिया।

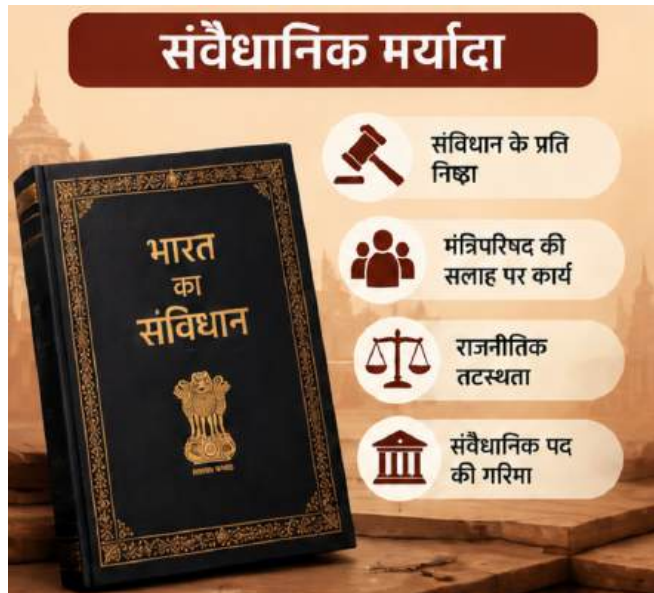
व्यवहार में कई परिस्थितियाँ ऐसी रही हैं जहाँ राष्ट्रपति का निर्णय राजनीतिक दिशा तय करने वाला सिद्ध हुआ। इनमें 1979 में चरण सिंह की नियुक्ति, 1986 में डाकघर (संशोधन) विधेयक पर पॉकेट वीटो, 1997 में उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन की सिफारिश का लौटाया जाना और 2006 में लाभ का पद संबंधी विधेयक की वापसी प्रमुख हैं। गठबंधन राजनीति, राज्यपालों की भूमिका पर बढ़ते विवाद और विधेयकों पर स्वीकृति की समय-सीमा को लेकर न्यायिक हस्तक्षेप ने इस प्रश्न को फिर प्रासंगिक बना दिया है कि राष्ट्रपति की मर्यादा कहाँ समाप्त होती है और परिस्थितिजन्य अधिकार कहाँ आरंभ होता है। इसी संदर्भ में यह शोध राष्ट्रपति पद का सैद्धांतिक और अनुभवजन्य दोनों स्तरों पर पुनर्मूल्यांकन करता है।

साहित्य समीक्षा

ग्रेनविल ऑस्टिन (Austin, 1966) ने संविधान निर्माण के इतिहास का विश्लेषण करते हुए बताया कि संविधान निर्माताओं ने सशक्त कार्यकारी राष्ट्रपति के विकल्प को जानबूझकर अस्वीकार किया। उनका लक्ष्य संसद के प्रति उत्तरदायी मंत्रिपरिषद को सर्वोच्च बनाना था। अपनी बाद की कृति में ऑस्टिन (Austin, 1999) ने दिखाया कि आपातकाल और उसके बाद के संशोधनों ने राष्ट्रपति-मंत्रिपरिषद संबंधों को औपचारिक रूप से स्पष्ट तो किया, परंतु राजनीतिक अस्थिरता के दौर में राष्ट्रपति के विवेक का प्रश्न खुला रह गया।

डी.डी. बसु (Basu, 2008) और एच.एम. सीरवाई (Seervai, 1991) ने राष्ट्रपति की शक्तियों का विधिक विश्लेषण किया है। बसु के अनुसार राष्ट्रपति का विवेक संविधान में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ नहीं है, बल्कि परिस्थितियों से उत्पन्न होता है। सीरवाई ने अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग पर

तीखी आलोचना की और न्यायिक पुनरावलोकन की आवश्यकता पर बल दिया। सुभाष कश्यप (Kashyap, 1994) ने राष्ट्रपति को "संविधान का संरक्षक" माना, जिसकी भूमिका संकट के समय सक्रिय होती है।



न्यायिक दृष्टि से शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य (1974) में सात न्यायाधीशों की पीठ ने स्थापित किया कि राष्ट्रपति और राज्यपाल सामान्यतः मंत्रिपरिषद् की सलाह पर ही कार्य करेंगे। एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994) ने अनुच्छेद 356 की घोषणा को न्यायिक पुनरावलोकन के अधीन किया। इस निर्णय ने बहुमत परीक्षण का स्थान सदन को माना और यह व्यवस्था दी कि संसद की स्वीकृति से पहले विधानसभा का विघटन नहीं किया जाना चाहिए। रामेश्वर प्रसाद बनाम भारत संघ (2006) में बिहार विधानसभा के 2005 के विघटन को असंवैधानिक ठहराया गया। यह निर्णय राष्ट्रपति द्वारा मंत्रिपरिषद् की सिफारिश को यांत्रिक रूप से स्वीकार करने की सीमाओं को उजागर करता है। केहर सिंह बनाम भारत संघ (1989) और ईपुरु सुधाकर बनाम आंध्र प्रदेश सरकार (2006) ने क्षमादान शक्ति को सीमित न्यायिक पुनरावलोकन के अधीन माना। नबाम रेबिया बनाम उपाध्यक्ष (2016) ने राज्यपाल के विवेक को संकुचित किया, जिसका तार्किक प्रभाव राष्ट्रपति पद की व्याख्या पर भी पड़ता है। तमिलनाडु राज्य बनाम तमिलनाडु के राज्यपाल (2025) में विधेयकों पर निर्णय की समय-सीमा का प्रश्न उठाया गया, जिसने राष्ट्रपति को आरक्षित विधेयकों पर निर्णय की अवधि को भी चर्चा के केंद्र में ला दिया।

आयोगों के स्तर पर सरकारिया आयोग (Government of India, 1988) ने अनुच्छेद 356 का प्रयोग अंतिम उपाय के रूप में करने की अनुशंसा की। संविधान के कार्यकरण की समीक्षा हेतु राष्ट्रीय आयोग (NCRWC, 2002) ने त्रिशंकु सदन में प्रधानमंत्री की नियुक्ति के लिए स्पष्ट परिपाटियाँ विकसित करने का सुझाव दिया।



संस्मरण साहित्य इस विमर्श को व्यावहारिक आधार देता है। आर. वेंकटरमण (Venkataraman, 1994) ने त्रिशंकु लोकसभा में सबसे बड़े दल को आमंत्रित करने की अपनी पद्धति का विवरण दिया है। ए.पी.जे. अब्दुल कलाम (Kalam, 2012) ने बिहार विघटन और लाभ का पद विधेयक से जुड़ी दुविधाओं का वर्णन किया है। प्रणब मुखर्जी (Mukherjee, 2021) ने अध्यादेशों पर राष्ट्रपति की आपत्तियों और परामर्शकारी भूमिका को रेखांकित किया है। ए.जी. नूरानी (Noorani, 2000) ने राष्ट्रपति, संसद और राज्यों के बीच संवैधानिक प्रश्नों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। चौधरी, खोसला और मेहता (Choudhry, Khosla & Mehta, 2016) द्वारा संपादित ऑक्सफोर्ड हैंडबुक में कार्यपालिका शक्ति के तुलनात्मक सिद्धांतों पर विचार किया गया है। माधव खोसला (Khosla, 2012) ने संवैधानिक परिपाटियों को भारतीय लोकतंत्र की स्थिरता का आधार बताया है। जेम्स मैनर (Manor, 1994) ने प्रधानमंत्री पद के बदलते स्वरूप के संदर्भ में राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री संबंधों का विश्लेषण किया है।

शोध अंतराल

उपलब्ध साहित्य मुख्यतः विधिक-सैद्धांतिक या संस्मरणात्मक है। विशेषज्ञ समुदाय राष्ट्रपति के परिस्थितिजन्य अधिकारों को लोकतांत्रिक वैधता से किस सीमा तक जोड़कर देखता है, इसका अनुभवजन्य और सांख्यिकीय अध्ययन हिंदी शोध-साहित्य में लगभग अनुपस्थित है। विभिन्न परिस्थितिजन्य अधिकारों के सापेक्ष महत्व का परिमाणात्मक आकलन भी नहीं मिलता। प्रस्तुत अध्ययन इसी अंतराल को भरने का प्रयास करता है।

शोध उद्देश्य

1. राष्ट्रपति की संवैधानिक मर्यादा और परिस्थितिजन्य अधिकारों की संवैधानिक एवं न्यायिक सीमाओं का विश्लेषण करना।
2. संवैधानिक मर्यादा, परिस्थितिजन्य अधिकार और संस्थागत संतुलन का लोकतांत्रिक वैधता पर प्रभाव ज्ञात करना।
3. विभिन्न विशेषज्ञ समूहों में परिस्थितिजन्य अधिकार संबंधी धारणा के अंतर का परीक्षण करना।

4. प्रमुख परिस्थितिजन्य अधिकारों के सापेक्ष महत्व का क्रम निर्धारित करना।

शोध परिकल्पनाएँ

H₀₁: संवैधानिक मर्यादा, परिस्थितिजन्य अधिकार एवं संस्थागत संतुलन का लोकतांत्रिक वैधता पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

H₀₂: विभिन्न उत्तरदाता समूहों में परिस्थितिजन्य अधिकार संबंधी धारणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

H₀₃: राष्ट्रपति के विभिन्न परिस्थितिजन्य अधिकारों के सापेक्ष महत्व में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध प्रविधि

शोध अभिकल्प: अध्ययन में मिश्रित प्रविधि अपनाई गई। गुणात्मक भाग में संविधान के अनुच्छेद 53, 74, 75, 78, 85, 111, 123 और 356, संविधान सभा की बहसों, नौ प्रमुख न्यायिक निर्णयों तथा ऐतिहासिक राष्ट्रपतीय हस्तक्षेपों का दस्तावेजी विश्लेषण किया गया। परिमाणात्मक भाग में वर्णनात्मक-सहसंबंधात्मक सर्वेक्षण अभिकल्प का प्रयोग किया गया।

जनसंख्या एवं न्यादर्श: उद्देश्यपूर्ण एवं स्नोबॉल न्यादर्श विधि से 300 विशेषज्ञों को प्रश्नावली भेजी गई। इनमें से 250 पूर्ण उत्तर प्राप्त हुए, अर्थात् प्रत्युत्तर दर 83.3% रही। आँकड़े दिल्ली-एनसीआर, उत्तर प्रदेश, राजस्थान एवं मध्य प्रदेश से जनवरी से मार्च 2026 के बीच एकत्र किए गए।

तालिका 1: उत्तरदाताओं की रूपरेखा (N = 250)

श्रेणी	उप-श्रेणी	संख्या	प्रतिशत
व्यावसायिक समूह	विधि/राजनीति विज्ञान	70	28.0
	संकाय सदस्य		
	अधिवक्ता	60	24.0
	शोधार्थी	75	30.0
	सेवानिवृत्त प्रशासनिक अधिकारी	45	18.0
लिंग	पुरुष	158	63.2
	महिला	92	36.8
अनुभव	10 वर्ष से कम	108	43.2
	10-20 वर्ष	89	35.6
	20 वर्ष से अधिक	53	21.2

शोध उपकरण: स्व-निर्मित संरचित प्रश्नावली में 24 कथन पाँच-बिंदु लिफ्ट मापनी पर रखे गए (1 = पूर्णतः असहमत, 5 = पूर्णतः सहमत)। कथन चार आयामों में विभक्त हैं और प्रत्येक आयाम में 6 कथन हैं: संवैधानिक मर्यादा (CM), परिस्थितिजन्य अधिकार (PA), संस्थागत संतुलन (SS) और लोकतांत्रिक वैधता (LV)। इसके अतिरिक्त छह परिस्थितिजन्य अधिकारों को महत्व के आधार पर 1 से 6 तक क्रमबद्ध

करने का एक खंड भी रखा गया। विषय-वस्तु वैधता पाँच विधि विशेषज्ञों से प्रमाणित कराई गई।

विश्वसनीयता एवं वैधता: KMO मान 0.852 रहा और बार्टलेट परीक्षण सार्थक पाया गया ($\chi^2 = 2764.31$, $df = 276$, $p < .001$), जिससे कारक विश्लेषण की उपयुक्तता सिद्ध होती है।

तालिका 2: आंतरिक संगति विश्वसनीयता

आयाम	कथन संख्या	क्रॉनबैक अल्फा
संवैधानिक मर्यादा (CM)	6	0.84
परिस्थितिजन्य अधिकार (PA)	6	0.81
संस्थागत संतुलन (SS)	6	0.79
लोकतांत्रिक वैधता (LV)	6	0.86
समग्र मापनी	24	0.88

सांख्यिकीय विश्लेषण: आँकड़ों का विश्लेषण SPSS 26 में किया गया। H₀₁ के परीक्षण हेतु पियर्सन सहसंबंध एवं बहुचर रैखिक प्रतिगमन, H₀₂ हेतु एकमार्गी ANOVA एवं ट्यूकी पश्च परीक्षण, तथा H₀₃ हेतु फ्रीडमैन परीक्षण और केंडल W का प्रयोग किया गया। सार्थकता स्तर $\alpha = 0.05$ निर्धारित किया गया।

परिणाम

वर्णनात्मक सांख्यिकी

तालिका 3: आयामवार माध्य एवं मानक विचलन (N = 250)

आयाम	माध्य	मानक विचलन	व्याख्या
संवैधानिक मर्यादा	3.92	0.61	उच्च सहमति
परिस्थितिजन्य अधिकार	3.47	0.74	मध्यम-उच्च सहमति
संस्थागत संतुलन	3.68	0.66	उच्च सहमति
लोकतांत्रिक वैधता	3.81	0.69	उच्च सहमति

संवैधानिक मर्यादा को सर्वाधिक समर्थन मिला। परिस्थितिजन्य अधिकार का माध्य अपेक्षाकृत कम और विचलन अधिक रहा, जो इस विषय पर विशेषज्ञों के बीच मत-विभाजन को दर्शाता है।

सहसंबंध विश्लेषण

तालिका 4: पियर्सन सहसंबंध आव्यूह (N = 250)

आयाम	CM	PA	SS	LV
CM	1			
PA	0.21**	1		
SS	0.48**	0.39**	1	
LV	0.52**	0.44**	0.57**	1

** $p < .01$

सभी आयाम लोकतांत्रिक वैधता से सार्थक और धनात्मक रूप से सहसंबद्ध हैं। संस्थागत संतुलन का सहसंबंध सबसे अधिक ($r = 0.57$) है। संवैधानिक मर्यादा और परिस्थितिजन्य अधिकार के बीच दुर्बल सहसंबंध ($r = 0.21$) बताता है कि विशेषज्ञ इन दोनों को परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि अलग-अलग आयाम मानते हैं।



प्रतिगमन विश्लेषण (H_{01})

तालिका 5: लोकतांत्रिक वैधता पर बहुचर प्रतिगमन

प्रागुक्तक	B	मानक त्रुटि	β	t	p	VI F
स्थिरांक	0.377	0.198	-	1.90	.058	-
संवैधानिक मर्यादा	0.354	0.061	0.313	5.83	<.001	1.30
परिस्थितिजन्य अधिकार	0.232	0.048	0.248	4.86	<.001	1.18
संस्थागत संतुलन	0.338	0.060	0.323	5.67	<.001	1.47

$R = 0.675$, $R^2 = 0.456$, समायोजित $R^2 = 0.449$, $F(3,246) = 68.73$, $p < .001$

मॉडल लोकतांत्रिक वैधता के 45.6% विचरण की व्याख्या करता है। सभी VIF मान 1.5 से कम हैं, अतः बहुसंरेखता की समस्या नहीं है। संस्थागत संतुलन सबसे प्रबल प्रागुक्तक है, उसके बाद संवैधानिक मर्यादा आती है। परिस्थितिजन्य अधिकार का प्रभाव भी सार्थक है। अतः H_{01} अस्वीकृत की जाती है।

समूहगत अंतर (H_{02})

तालिका 6: व्यावसायिक समूहानुसार परिस्थितिजन्य अधिकार पर ANOVA

समूह	n	माध्य	मानक विचलन
संकाय सदस्य	70	3.41	0.72
अधिवक्ता	60	3.62	0.70
शोधार्थी	75	3.29	0.76
सेवानिवृत्त प्रशासनिक अधिकारी	45	3.66	0.73

स्रोत	वर्गों का योग	df	माध्य वर्ग	F	p	η^2
समूहों के मध्य	5.66	3	1.886	3.55	.015	0.041
समूहों के भीतर	130.70	246	0.531			
कुल	136.35	249				

ANOVA से समूहों के बीच सार्थक अंतर प्रकट हुआ, यद्यपि प्रभाव-आकार छोटा है ($\eta^2 = 0.041$)। ट्यूकी पश्च परीक्षण में सेवानिवृत्त प्रशासनिक अधिकारियों (3.66) और शोधार्थियों (3.29) के बीच अंतर सार्थक रहा (माध्य अंतर = 0.37, $p = .034$)। अधिवक्ताओं और शोधार्थियों के बीच अंतर भी सार्थक पाया गया (माध्य अंतर = 0.33, $p = .046$)। अतः H_{02} अस्वीकृत की जाती है। व्यावहारिक प्रशासनिक और विधिक अनुभव वाले उत्तरदाता राष्ट्रपति के परिस्थितिजन्य विवेक को अधिक आवश्यक मानते हैं।

परिस्थितिजन्य अधिकारों का सापेक्ष महत्व (H_{03})

तालिका 7: फ्रीडमैन परीक्षण: परिस्थितिजन्य अधिकारों का माध्य कोटि क्रम (N = 250)

परिस्थितिजन्य अधिकार	संवैधानिक आधार	माध्य कोटि	स्थान
त्रिशंकु सदन में प्रधानमंत्री की नियुक्ति	अनु. 75(1)	4.62	1
मंत्रिपरिषद् की सलाह पुनर्विचार हेतु लौटाना	अनु. 74(1) परंतुक	4.18	2
बहुमत खो चुकी सरकार की सलाह पर लोकसभा विघटन	अनु. 85(2)(ख)	3.71	3
विधेयक पुनर्विचार हेतु लौटाना	अनु. 111	3.34	4
प्रधानमंत्री से सूचना माँगना	अनु. 78	2.87	5
पॉकेट वीटो	अनु. 111 (समय-सीमा का अभाव)	2.28	6

$\chi^2(5) = 312.46$, $p < .001$; केंडल $W = 0.250$

परिस्थितिजन्य अधिकारों के महत्व में सार्थक अंतर है, अतः H_{03} अस्वीकृत की जाती है। केंडल $W = 0.250$ विशेषज्ञों के बीच मध्यम स्तर की सहमति दर्शाता है। पॉकेट वीटो को सबसे कम महत्व दिया गया, जो इसकी लोकतांत्रिक स्वीकार्यता पर संदेह को दर्शाता है।

दस्तावेज़ी विश्लेषण

तालिका 8: परिस्थितिजन्य अधिकार के प्रमुख ऐतिहासिक प्रयोग

वर्ष	राष्ट्रपति	घटना	संवैधानिक आधार
1979	नीलम संजीव रेड्डी	चरण सिंह की प्रधानमंत्री पद पर नियुक्ति; बाद में लोकसभा विघटन	अनु. 75, 85
1986	ज्ञानी जैल सिंह	भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक पर निर्णय न लेना	अनु. 111
1989	आर. वेंकटरमण	त्रिशंकु लोकसभा में सबसे बड़े दल के नेता को आमंत्रण की परिपाटी	अनु. 75
1997	के.आर. नारायणन	उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन की सिफारिश पुनर्विचार हेतु लौटाई	अनु. 74(1), 356
1998	के.आर. नारायणन	बिहार में राष्ट्रपति शासन की सिफारिश लौटाई	अनु. 74(1), 356
2006	ए.पी.जे. अब्दुल कलाम	संसद (निरहता निवारण) संशोधन विधेयक पुनर्विचार हेतु लौटाया	अनु. 111

ये घटनाएँ सर्वेक्षण परिणामों की पुष्टि करती हैं। सर्वाधिक महत्व वाले अधिकार, यानी प्रधानमंत्री की नियुक्ति और सलाह पुनर्विचार हेतु लौटाना, ऐतिहासिक रूप से भी सबसे निर्णायक रहे हैं।



विवेचना

परिणाम दर्शाते हैं कि विशेषज्ञ राष्ट्रपति को केवल "रबर स्टाम्प" नहीं मानते। संवैधानिक मर्यादा को मिला उच्चतम माध्य (3.92) शमशेर सिंह (1974) में प्रतिपादित सलाह-बाध्यता के सिद्धांत की व्यापक स्वीकृति का संकेत है। साथ ही परिस्थितिजन्य अधिकार का लोकतांत्रिक वैधता पर सार्थक प्रभाव ($\beta = 0.248$) बसु (2008) और कश्यप (1994) के इस मत का समर्थन करता है कि संकट की स्थिति में राष्ट्रपति संविधान के संरक्षक की भूमिका निभाता है।

संस्थागत संतुलन का सबसे प्रबल प्रागुक्तक होना महत्वपूर्ण निष्कर्ष है। इसका अर्थ है कि लोकतांत्रिक वैधता किसी एक पद की शक्ति से नहीं, बल्कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद, संसद और न्यायपालिका के बीच संतुलन से उत्पन्न होती है। यह बोम्मई (1994) और रामेश्वर प्रसाद (2006) की उस न्यायिक दृष्टि के अनुरूप है, जिसमें अनुच्छेद 356 जैसे विवेकाधीन प्रयोगों को न्यायिक और संसदीय जाँच के अधीन रखा गया।

त्रिशंकु सदन में प्रधानमंत्री की नियुक्ति को सर्वोच्च स्थान मिलना वेंकटरमण (1994) के संस्मरण और NCRWC (2002) की अनुशंसाओं से मेल खाता है। इस क्षेत्र में स्पष्ट परिपाटियों का अभाव राष्ट्रपति के विवेक को अनिवार्य बना देता है। इसके विपरीत पॉकेट वीटो को सबसे कम महत्व मिलना यह बताता है कि विशेषज्ञ अनिश्चितकालीन निष्क्रियता को संवैधानिक मर्यादा के विरुद्ध मानते हैं। यह दृष्टिकोण तमिलनाडु राज्य (2025) में उठे समय-सीमा संबंधी प्रश्नों से भी जुड़ता है।

समूहगत अंतर से पता चलता है कि व्यावहारिक अनुभव वाले सेवानिवृत्त अधिकारी और अधिवक्ता विवेक की आवश्यकता को अधिक स्वीकार करते हैं, जबकि शोधार्थी अधिक सैद्धांतिक और संहिताबद्ध दृष्टिकोण रखते हैं। यह नूरानी (2000) के इस तर्क को बल देता है कि संवैधानिक व्यवहार अक्सर पाठ से आगे जाकर परिपाटियों पर निर्भर करता है।

निष्कर्ष

यह अध्ययन स्थापित करता है कि भारतीय संसदीय लोकतंत्र में राष्ट्रपति की संवैधानिक मर्यादा और परिस्थितिजन्य अधिकार एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। मर्यादा सामान्य परिस्थितियों में उत्तरदायी सरकार की सर्वोच्चता सुनिश्चित करती है। परिस्थितिजन्य अधिकार असाधारण परिस्थितियों में लोकतांत्रिक निरंतरता की रक्षा करता है। तीनों शून्य परिकल्पनाएँ अस्वीकृत हुईं। संवैधानिक मर्यादा, परिस्थितिजन्य अधिकार और संस्थागत संतुलन मिलकर लोकतांत्रिक वैधता के 45.6% विचरण की व्याख्या करते हैं। विशेषज्ञ त्रिशंकु सदन में नियुक्ति और सलाह पुनर्विचार को सर्वाधिक महत्वपूर्ण विवेकाधीन क्षेत्र मानते हैं, जबकि पॉकेट वीटो को सबसे कम स्वीकार्य। अतः राष्ट्रपति पद का पुनर्मूल्यांकन उसकी शक्तियाँ बढ़ाने या घटाने के बजाय उनके प्रयोग को पारदर्शी, तर्कसंगत और परिपाटी-आधारित बनाने की दिशा में होना चाहिए।

सुझाव

1. त्रिशंकु लोकसभा में प्रधानमंत्री की नियुक्ति के लिए NCRWC की अनुशंसाओं के अनुरूप लिखित संवैधानिक परिपाटी विकसित की जाए।

2. अनुच्छेद 111 के अंतर्गत राष्ट्रपति के निर्णय हेतु युक्तिसंगत समय-सीमा पर संसदीय विमर्श हो, ताकि पॉकेट वीटो की अनिश्चितता समाप्त हो सके।
3. अनुच्छेद 74(1) के अंतर्गत सलाह लौटाने पर राष्ट्रपति के कारणों को सार्वजनिक करने की परंपरा विकसित की जाए।
4. अनुच्छेद 356 के प्रयोग में सरकारिया आयोग और बोम्मई निर्णय के दिशानिर्देशों का कठोरता से पालन हो।
5. राष्ट्रपति सचिवालय और मंत्रिमंडल के बीच परामर्श प्रक्रिया का संस्थागत अभिलेखन किया जाए।

सीमाएँ

अध्ययन का न्यादर्श चार राज्यों तक सीमित है और उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श विधि के कारण सामान्यीकरण की सीमा है। स्व-प्रतिवेदित आँकड़ों में सामाजिक वांछनीयता पूर्वाग्रह की संभावना बनी रहती है। अनुप्रस्थ अभिकल्प होने के कारण कारण-कार्य संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता।

भावी शोध की दिशा

भविष्य में अखिल भारतीय स्तर पर बड़े न्यादर्श के साथ अनुदैर्घ्य अध्ययन किया जा सकता है। राष्ट्रपति और राज्यपाल के विवेकाधिकारों का तुलनात्मक विश्लेषण उपयोगी होगा। आयरलैंड, इज़राइल और जर्मनी जैसे अन्य संसदीय गणराज्यों के राष्ट्राध्यक्षों के साथ तुलनात्मक संवैधानिक अध्ययन भी इस विमर्श को समृद्ध करेगा।

संदर्भ सूची

1. Austin, G. (1966). *The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation*. Oxford: Clarendon Press.
2. Austin, G. (1999). *Working a Democratic Constitution: The Indian Experience*. New Delhi: Oxford University Press.
3. Basu, D. D. (2008). *Introduction to the Constitution of India* (20th ed.). Nagpur: LexisNexis Butterworths Wadhwa.
4. Choudhry, S., Khosla, M., & Mehta, P. B. (Eds.). (2016). *The Oxford Handbook of the Indian Constitution*. Oxford: Oxford University Press.
5. Constituent Assembly Debates. (1948). *Official Report*, Vol. VII, 4 November 1948. New Delhi: Lok Sabha Secretariat.
6. Government of India. (1988). *Report of the Commission on Centre-State Relations* (Sarkaria Commission). New Delhi: Government of India.
7. Kalam, A. P. J. A. (2012). *Turning Points: A Journey Through Challenges*. New Delhi: HarperCollins India.
8. Kashyap, S. C. (1994). *Our Constitution: An Introduction to India's Constitution and Constitutional Law*. New Delhi: National Book Trust.
9. Khosla, M. (2012). *The Indian Constitution* (Oxford India Short Introductions). New Delhi: Oxford University Press.
10. Manor, J. (Ed.). (1994). *Nehru to the Nineties: The Changing Office of Prime Minister in India*. London: Hurst & Company.
11. Mukherjee, P. (2021). *The Presidential Years: 2012–2017*. New Delhi: Rupa Publications.
12. National Commission to Review the Working of the Constitution. (2002). *Report of the National Commission to Review the Working of the Constitution*. New Delhi: Government of India.
13. Noorani, A. G. (2000). *Constitutional Questions in India: The President, Parliament and the States*. New Delhi: Oxford University Press.
14. Seervai, H. M. (1991). *Constitutional Law of India: A Critical Commentary* (4th ed., Vol. 1). Bombay: N. M. Tripathi.
15. Venkataraman, R. (1994). *My Presidential Years*. New Delhi: HarperCollins India.
16. न्यायिक निर्णय
17. *Shamsher Singh v. State of Punjab*, (1974) 2 SCC 831.

18. *Kehar Singh v. Union of India*, (1989) 1 SCC 204.
19. *S. R. Bommai v. Union of India*, (1994) 3 SCC 1.
20. *Rameshwar Prasad v. Union of India*, (2006) 2 SCC 1.
21. *Epuru Sudhakar v. Government of Andhra Pradesh*, (2006) 8 SCC 161.
22. *Nabam Rebia and Bamang Felix v. Deputy Speaker, Arunachal Pradesh Legislative Assembly*, (2016) 8 SCC 1.
23. *State of Tamil Nadu v. Governor of Tamil Nadu*, Supreme Court of India, निर्णय दिनांक 8 अप्रैल 2025.